RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

साप्ताहिक

# आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 24 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 6 सितम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-45, अंक : 24, 3-6 सितम्बर 2020 तदनुसार 22 भाद्रपद, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

# भोग और कर्म हाथों में धारण करता हूँ

लेo-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे।।

-ऋ. १।१६८।३

**शब्दार्थ-ये** = जो **तृप्तांशवः** = रस से पूर्ण अंशुओं से युक्त **सोमासः+न** = सोमों की भाँति **सुताः** = निष्पन्न किये गये हैं, **हृत्सु+पीतासः** = जी भरके जो पान कर चुके हैं और जो **दुवसः+न** = परिचारकों की भाँति **आसते** = रहते हैं, **एषाम्** = इनके **अंसेषु** = कन्धों पर **रम्भिणी+इव** = आरम्भ शक्ति के समान शक्ति **रारभे** = कार्य आरम्भ करती है। **खादिः** = भोग **च** = और **कृतिः** = कर्म, पुरुषार्थ **च** = भी **हस्तेषु** = हाथों में ही **सं+दधे** = भली प्रकार धारण किया जाता है।

**व्याख्या-**जी भरकर सोम पीना भोग का उपलक्षण है, किन्तु यह भोग वैसे ही नहीं मिल जाता है। इसके लिए तृप्तांशु सोमों को कूटने की आवश्यकता है, अर्थात् सोमपान से पूर्ण सोमसवन अनिवार्य है। सोमसवन स्पष्ट ही परिश्रमसाध्य है। सुतरां परिणाम निकला कि पुरुषार्थ=परिश्रम=कर्म=कृति पहले है और भोग=खादि=प्रारब्ध पीछे है। उत्तरार्ध में एक सूक्ष्म सिद्धान्त की ओर ध्यान दिलाया गया है। जिनके हाथ में भोग और कर्म है-**'एषामंसेषु रम्भिणीव रारभे'** = आरम्भशक्ति भूयोभूयः उन्हीं के कन्धों पर की जाती है, अर्थात् भोग भी पुरुषार्थ के बिना सिद्ध नहीं होता। भोग-प्राप्ति के लिए भी पुरुषार्थ की आवश्यकता है। भोजन परोसा जा चुका है, यह हमारा भोग है, किन्तु हाथ और वाणी की क्रिया के बिना यह शरीर का अङ्ग नहीं बन सकता।

वैदिक धर्म प्रारब्धवादी नहीं, पुरुषार्थवादी है। यजुर्वेद (४०।१५) में मरण का दृश्य दिखलाकर 'कृतऽस्मर' अपने 'कर्मों का स्मरण कर' कहा है, न कि 'भाग्यं स्मर' [अपने भाग्य=प्रारब्ध को स्मरण कर]।

'प्रारब्ध' शब्द के अर्थ पर विचार करने से भी कर्मवाद की पुष्टि होती है। प्रारब्ध=प्र+आरब्ध=भली प्रकार आरम्भ किया गया। खेती का भली प्रकार प्रारम्भ किया जाएगा, भूमि का जोतना आदि कर्म भली प्रकार किये जाएँगे तो फल भी अच्छा होगा, अर्थात् प्रारब्ध=भाग्य, किये हुए का फल है, अतः कर्म प्रधान है। अब यह अपने वश में है कि हम अपना भाग्य-प्रारब्ध [भली प्रकार का आरम्भ किया हुआ] बनाएँ, या दुरारब्ध [बुरी भाँति आरम्भ किया हुआ] बनाएँ, अतः वेद का यह कथन है कि-**'हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च संदधे'** सर्वथा यथार्थ है। बालक उत्पन्न होते ही पहले पूर्वार्जित कर्म का भोग भोगने लगता है। कर्म-योनिगत मनुष्य-बालक पर्याप्त काल तक भोग्य अवस्था में रहता है, अतः मन्त्र में: 'खादि' को 'कृति' से पहले स्थान दिया है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

---

या ते प्राण प्रिया तनूर्या ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे।।

-अथर्व. ११.४.९

**भावार्थ-**हे परम प्यारे परमात्मन्! संसार-भर में आप जैसा कोई प्यारा नहीं है, प्यारे से भी प्यारे आप हैं। जो महापुरुष आपसे प्यार करते हैं, उनको अमृतत्व नाम मोक्ष का साधन अपनी अनन्य भक्ति और ज्ञान रूप औषध का दान आप करते हैं, जिसको प्राप्त होकर वे महात्मा सदा आनन्द में मग्न रहते हैं।

प्राणः प्रजाः अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न।।

-अथर्व. ११.४.१०

**भावार्थ-**हे परमेश्वर! आप चराचर सब जगत् में व्याप रहे हैं, ऐसी कोई वस्तु वा स्थान नहीं, जहाँ आपकी व्याप्ति न हो, आप ही सारे संसार के कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं, सब की क्षण-क्षण चेष्टाओं को देख रहे हैं, आपसे किसी की कोई बात भी छिपी नहीं, इसलिए हमें सदाचारी और अपना प्रेमी भक्त बनावें, जिन को देख कर आप प्रसन्न हों।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्।।

-अथर्व. ११.४.१२

**भावार्थ-**हे चेतन देव जगत्पते प्रभो! आप सब स्थानों में प्रकाशमान हो रहे हैं, आप ही सब प्राणियों को अपने-अपने व्यापारों में प्रेरक रहे हैं, आपकी ही सब विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं, आप ही सब जगत् के प्रकाशक और प्रेरक होने से सूर्य, और आनन्द दायक होने से चन्द्रमा कहलाते हैं, सब महात्मा लोग, आपको ही सब प्रजाओं का कर्ता और स्वामी कहते हैं।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्।।

-अथर्व. ११.४.११

**भावार्थ-**वेदान्त शास्त्र निर्माता व्यास जी महाराज लिखते हैं, 'अत एव प्राण' जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि कर्ता होने से प्राण शब्द का अर्थ परमात्मा जानना चाहिये न कि प्राण वायु। इसलिए सब चेष्टाओं का कारण होने से परमात्मा का नाम प्राण है। ऐसा परमेश्वर ही हमारे जन्म, मृत्यु का कर्ता और अनेकविध सुख का दाता है। प्राणरूप परमेश्वर ही सत्यवादी, सत्यकर्ता, सत्यमानी और सच्चाई के ही प्रचार करने वाले पुरुष को उत्तम लोक आदि प्राप्त कराता है।

# अर्जुन विषाद : एक दृष्टि

ले.-डॉ. प्रतिभा संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

श्रीमद्भगवद्गीता ऐसा अनुपमेय सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ है जिसकी प्रखर ज्ञान रश्मियों ने न केवल सन्त-महात्माओं, भक्तिवादियों, मोक्षार्थियों के तमः पूरित मानस को आलौकित किया, संसार के कर्मयोगियों, विचारक-चिन्तकों को ही चिन्तनदृष्टि दी बल्कि राष्ट्रहित हंसी खुशी बलिदान होने वाले राष्ट्रयुवकों को भी अदम्य साहस से आपूरित भी किया। वस्तुत: भगवद्गीता मानवजाति के लिए अमूल्य निधि है, यह वह शास्त्र है जो मानव जीवन यात्रा के लिए अक्षयपाथेय बनकर मानवसमाज की समस्त समस्याओं को सुलझाते हुए उसके सम्पूर्ण जीवन को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' बना देता है।

नि:सन्देह गीता का वास्तविक माहात्म्य मोहग्रस्त अर्जुन को प्रदत्त श्रीकृष्ण का उपदेश ही है, पर इसमें जिसे निमित्त बनाया गया और जिन परिस्थितियों या जिस सन्दर्भ में इस उपदेश की अभिव्यक्ति हुई, उसका महत्त्व भी कम नहीं है। गीता का विश्वप्रसिद्ध निष्काम कर्मयोग तथा आत्मवाद के सोपान पर आरूढ होने के लिए सर्वप्रथम अर्जुनविषादरूपी भूमि पर भी दृढ़ता से पाँव स्थापित करने की आवश्यकता है।

महाभारत के युद्ध को रोकने के अनेक प्रयास हुए किन्तु दुराग्रही दुर्योधन एक ही बात पर दृढ़ रहा-

**यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।**

**तावदप्यपरित्याज्यं भूमेन पाण्डवान् प्रति।। म. उद्यो. 127/25**

अर्थात् हे केशव! इस समय मुझ महाबाहु दुर्योधन के जीते जी पाण्डवों को भूमि का उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता जितना कि एक बारीक सूई की नोक से छिद सकता है।

दुर्योधन की युद्ध समर्थक ऐसी घोषणाओं तथा पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए उसके अत्याचारों व अपमान से आहत पाण्डवों ने माता कुन्ती की आज्ञा तथा श्रीकृष्ण की प्रेरणा से धर्म समझकर युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

अर्जुन निश्चितरूप से क्षत्रियों के प्रतिनिधि के रूप में वर्णित हैं और क्षत्रिय का सर्वप्रमुख धर्म है-आततायियों से जन साधारण की सुरक्षा करना। वेद में भी कहा गया-

**योऽस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनाः।**

**निन्दाद्यो स्मान् धिप्साच्च सर्व तं भस्मसा कुरु।। यजु. 11/80**

हे क्षत्रिय! जो हमसे शत्रु द्वेष करे, निन्दा करें, दम्भ दिखावे, उसे तू भस्मीभूत कर।

मनुस्मृतिकार ने भी कहा-

**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।**

**नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।।8/350.51**

अपना अनिष्ट करने वाले आततायी को बिना विचारे ही मार देना चाहिए। आततायी को मारने से मारने वाले को कुछ भी दोष नहीं होता।

वसिष्ठस्मृति में आततायी के छः लक्षण बताये गये हैं-

**अग्निदो गर्दश्चैव शस्त्रपाणि-र्धनापहः।**

**क्षेत्रवारापहर्ता च षडेते च आततायिनः।।3/19**

आग लगाने वाला, विष देने वाला, हाथ में शस्त्र लेकर मारने को उद्यत धन हरण करने वाला, जमीन छीनने वाला और स्त्री का हरण करने वाला-ये छहों ही आततायी हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में भी स्पष्ट कहा गया है कि-

**एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्।**

**कुलं हत्त्वा च राष्ट्रं च न यत् वृत्तोपघातकम्।। म.भा.भा.**

यदि एक पुरूष को मारकर कुटुम्ब के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर हो जाए और एक कुटुम्ब का नाश कर देने से समस्त राष्ट्र में सुख शान्ति छा जाए तो वैसा करना सदाचार है, धर्म का नाशक नहीं।

वास्तव में धर्म की व्यवस्था लोकयात्रा के निर्वाह के लिए होती है। सर्वथा हिंसा न की जाए, दुष्ट की हिंसा की जाए या नहीं यह प्रश्न उपस्थित होने पर जिससे धर्म की रक्षा हो वही कार्य श्रेष्ठ मानना चाहिए। तद्यथा-

**लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम्।**

**अहिंसा साधुहिंसानिःश्रेयान् धर्मपरिग्रहः।। म.भा.शा.पर्व**

इसलिए क्षात्र धर्म को सर्वोपरि मानकर सेना तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अर्जुन रणक्षेत्र में पहुँच गया। अर्जुन क्षत्रिय अवश्य था किन्तु सबसे पूर्व वह एक मानव था। अत: अर्जुन ने शत्रुपक्ष में ज्यों ही स्वजनों को देखा, उसके मानवीय गुणों ने उस पर आधिपत्य कर उसके क्षात्रधर्म को दुर्बल कर दिया। वस्तुत: अर्जुन का विषाद उसकी दुर्बलता या कायरता नहीं बल्कि उसके मानवोचित स्वाभाविक धर्म थे। श्रीमद्भगवत्गीता जैसे शास्त्रों के एक एक अध्याय एक एक श्लोक और प्रत्येक पद तपः पूर्त ऋषियों के समाधि अवस्था में आविर्भूत अनन्त रहस्यों को अपने अन्दर समेटे हुए हैं। स्वजनों के प्रति उमड़े हुए अर्जुन के स्नेह सम्मान तथा उसके विषाद में प्रत्येक युग के प्रत्येक मानव के लिए दिव्य सन्देश अनुस्यूत है।

आज जब प्रभु प्रदत्त स्फटिक सम निर्मल हृदयरूपी फर्शों पर मानव के स्वार्थ की ऐसी गहरी काई जम गयी है जिसमें आचार्य गुरुजन, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि रिश्ते नाते फिसलते चले जा रहे हैं। स्नेह, सम्मान, संवेदना तथा मानवीय गुणों के सेतु जो समाज के घटकों को परस्पर आवद्ध करते थे, उनकी दृढ़ नींव को दम्भ काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष रूपी मूषक खोखले करते जा रहे हैं। आए दिन समाचार पत्रों में दिल दहला देने वाली स्वजनों के रक्त बहाने की क्रूर घटनायें राष्ट्र के नैतिक पतन को स्पष्टत: अभिव्यक्ति कर रही हैं। गीता का अर्जुन का विषाद प्रकरण कर्मयोग, आत्मवाद आदि की मात्र भूमिका के रूप में पठनीय नहीं बल्कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसका मनन-चिन्तन निश्चित रूप से आधुनिक मानवीय कठोरता व शून्यता को समाप्त कर पारस्परिक स्नेह, करूणा, सम्मान की रसाधारा बहाने में महत् उपयोगी है। युद्ध की दृष्टि से अर्जुन पाण्डव पक्ष का सर्वश्रेष्ठ पात्र तथा प्रतिनिधि तो था ही, दोनों ही पक्षों के क्षात्रधर्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक भी था। अन्ततः वह ऐतिहासिक क्षण आ गया जब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित प्रशिक्षित अर्जुन मनसा वाचा कर्मणा अपने सम्पूर्ण क्षत्रियत्त्व को युद्धाग्नि में अर्पित कर कौरवों के सर्वनाश हेतु सन्नद्ध हो गया तथा यत्नपूर्वक भगवान श्रीकृष्ण को अपने रथ का सारथि बना कर सेना सहित रणक्षेत्र में पहुँच गया। युद्ध से पूर्व अर्जुन ने अपने सारथि से कहा-

**'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत'।**

**योत्स्यामानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।**

**धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेयुर्द्धे प्रिय-चिकीर्षवः।।**

'मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य ले चलिए।' अर्जुन युद्ध करने से पूर्व अपने उन सभी शत्रुओं पर एक दृष्टि डालना चाहता था, जिन्हें उसने जीतना था या विनाश करना था। विशेषरूप से वह उन राजाओं के विषय में यह जानना चाहता था जो दुर्बुद्धि दुर्योधन के हितचिन्तक बनकर उसके विरोध में यहाँ पहुँचे हैं वस्तुत: दो भाईयों या एक ही कुल में परस्पर युद्ध होने पर कौन पक्ष में है और कौन विपक्ष में है? यह जानना अप्रसाङ्गिक नहीं है, किन्तु दोनों सेनाओं के मध्य पहुँच कर जैसे ही अर्जुन की दृष्टि शत्रुपक्ष के लोगों पर पड़ती है, समूचा वास्तविक तथ्य उनकी समझ में आ जाता है। उसके अनुसार यह वह युद्ध है जिनमें एक ही जाति, एक ही राष्ट्र, एक ही वंश के नहीं, बल्कि एक ही कुल और एक ही घर के लोग एक दूसरे के शत्रु बनकर आमने सामने खड़े हैं।

**( आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहः )**

**अत्रापश्यस्थितान् पार्थः पितृनाथ पिता महान्।**

**आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्ससखींस्तथा।**

**श्वशुरानसुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।।**

अर्जुन ने कहा-मुझे अपने ही गुरूजनों, दादा पितामह, ताऊ, चाचों, भाई, मामों, पुत्र, पौत्र, मित्र, ससुर अपने प्रियजनों का विनाश करना है? ये सब ही तो मेरे जीवन हेतु और विषय हैं, ये सब ही नहीं रहेंगे तो मैं जीवित रहकर क्या करूँगा?

**गुरून् हत्वा हि महाभावान्**
**श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।**
**हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव**
**भुञ्जीय भोगोन्रूधिर-प्रदिग्धान।।**

क्योंकि महानुभाव गुरूजनों को न मारकर इस लोक में भिक्षा का अन्न भी खा लेना मैं श्रेयस्कर समझता हूँ क्योंकि गुरूजनों को मारकर तो इसी लोक में 'रूधिरप्रदिग्धान्' रूधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।

अर्जुन ने युद्ध न करने के पक्ष में अन्य युक्तियाँ भी दी। उसने अतिविषण्ण मानस होकर कृष्ण से

( शेष पृष्ठ 7 पर )

सम्पादकीय

5 सितम्बर अध्यापक दिवस पर विशेष.........

# अध्यापक भावी पीढ़ी का निर्माता है

एक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक के ऊपर राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माण करने का महान् उत्तरदायित्व होता है। एक अध्यापक अपनी योग्यता, अनुभव और मार्गदर्शन के द्वारा राष्ट्र की युवा पीढ़ी को सही दिशा देने की क्षमता रखता है। एक शिक्षक के गौरव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब नन्द वंश के अन्तिम शासक धनानन्द ने आचार्य चाणक्य को एक साधारण सा शिक्षक कहकर भरे दरबार में अपमानित करने का प्रयास किया तो चाणक्य ने धनानन्द को ललकारते हुए कहा था कि-धनानन्द! शिक्षक कभी साधारण नहीं होता। प्रलय और निर्माण दोनों उसकी गोद में खेलते हैं। आचार्य चाणक्य ने अपनी इसी योग्यता के बल पर एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त का निर्माण करके उसके हाथों नन्द वंश का विनाश करवा कर और मौर्य वंश का साम्राज्य स्थापित करवाया था। इसलिए समाज में गुरू को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। अगर एक अध्यापक के अन्दर निर्माण करने की योग्यता है तो वह ऐसे शिष्यों का निर्माण करता है जो देश का गौरव बनते हैं। भावी पीढ़ी के निर्माण का उत्तरदायित्व एक शिक्षक के ऊपर होता है। इसलिए अध्यापक को निर्माता भी कहा जाता है।

आज वर्तमान में समाज को ऐसे आदर्श शिक्षकों की आवश्यकता है जो बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकें। आधुनिक विषयों की शिक्षा के साथ-साथ अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति युवा पीढ़ी को जागरूक करना आदर्श शिक्षक का मुख्य कार्य है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी को सुसंस्कृत करना, सद्गुणों से युक्त करना एक अच्छे शिक्षक का उत्तरदायित्व है। किसी भी राष्ट्र का आधार उस राष्ट्र का युवा वर्ग होता है। अगर युवा वर्ग को माता-पिता और गुरू के द्वारा सही मार्गदर्शन मिले तो वे राष्ट्र नई उँचाईयों को छू सकते हैं। एक भावी नागरिक का निर्माण करना आदर्श शिक्षक के हाथ में है। माता-पिता के बाद अगर किसी का स्थान है तो वह गुरू का है। शिक्षक दिवस मनाने का तात्पर्य है कि शिक्षक और शिष्य को अपने-अपने कर्त्तव्य का बोध हो। गुरू की शिष्य के प्रति कैसी भावना होनी चाहिए और शिष्य की गुरू के प्रति कैसी श्रद्धा होनी चाहिए, इन सबका बोध कराने के लिए शिक्षक दिवस मनाया जाता है। आज की शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों का समावेश न होने के कारण शिक्षक और शिष्य दोनों अपने लक्ष्य से विमुख हो गए हैं। शिक्षक का शिष्य के प्रति कोई लगाव नहीं है और शिष्य के मन में भी गुरू के प्रति कोई आदर सत्कार की भावना नहीं है। ऐसी मूल्यविहीन शिक्षा पद्धति से देश का नुक्सान हो रहा है। जिस विद्यार्थी को अपनी समस्त ऊर्जा को अपनी विद्याप्राप्ति और सकारात्मक कार्यों में लगाना चाहिए वही विद्यार्थी अपनी ऊर्जा को हड़ताल करना, आन्दोलन आदि कार्यों में व्यर्थ गंवा रहा है। शिक्षकों की शिष्य के प्रति अवहेलना का भाव इसके लिए उत्तरदायी है। ऐसे में चिन्तन करने की आवश्यकता है कि हमारी शिक्षण प्रणाली किस दिशा में जा रही है और शिक्षक दिवस मनाने का क्या औचित्य रह गया है?

भारतीय संस्कृति में गुरू और शिष्य का रिश्ता बहुत गहरा है। इसीलिए शिक्षा देने वाले को वैदिक विचारधारा में आचार्य और गुरू कहा गया है और विद्यार्थी या शिष्य को ब्रह्मचारी। आचार्य का अर्थ है- आचारं ग्राहयति इति आचार्यः। इतना ही नहीं कि ब्रह्मचारी को सदाचार की शिक्षा दे, अपितु शिष्य के जीवन में सदाचार को ढाल दे, उसे ऐसी परिस्थिति में रखे कि शिष्य सदाचार को अपने आप ग्रहण करे। वेदों में ब्रह्मचारी और आचार्य शिक्षा के दो बिन्दु हैं और इन दोनों को मिलाने वाली रेखा सदाचार है। अगर आचार नहीं तो आचार्य आचार्य नहीं, शिक्षा शिक्षा नहीं। आज की प्रचलित शिक्षा पद्धति से हम इस प्रकार की उम्मीद नहीं कर सकते कि वे बच्चों का सम्पूर्ण विकास कर दें। आज की शिक्षा तो केवल बड़ी-बड़ी फीसें लेकर बच्चों को परीक्षा पास करवाने का ठेका लेती हैं। चरित्र निर्माण का उसमें कोई स्थान नहीं है। बच्चा क्या कर रहा है, उसका रहन-सहन, व्यवहार, खान-पान, संगति कैसी है। इन सबसे आज की शिक्षा का कोई मतलब नहीं रह गया है। पहले शिक्षा में चरित्र को महत्ता दी जाती थी परन्तु आज चरित्र को शिक्षा का अंग ही नहीं समझा जाता। प्राचीन शिक्षा पद्धति में बालक के सम्पूर्ण जीवन का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य होता था जैसे आज्ञाकारी बनना, माता पिता की सेवा करना, सत्य बोलना, धर्म का पालन करना आदि शिक्षा भी दी जाती थी। आज की शिक्षा पद्धति में अध्यापक और शिष्य के बीच में इतनी दूरी है कि अध्यापक को अपने विषय से मतलब है और विद्यार्थी इन सभी बातों से अनजान है। आज न तो पहले जैसे शिक्षक रहे जो अपने छात्रों को सही संस्कार दे सके और न ही वे छात्र रहे हैं जो शिक्षक को माता-पिता से भी ऊंचा दर्जा देते हुए देव तुल्य मानें।

शिक्षक दिवस का यह अर्थ नहीं कि साल में एक बार शिक्षक दिवस मनाया। बच्चों के द्वारा गुरू की महिमा के ऊपर भाषण दे दिए गए या फिर बच्चों के द्वारा अपने अध्यापकों को कुछ गिफ्ट दे दिए जाए। बल्कि गुरू और शिष्य के बीच साल भर सामंजस्य बना रहे। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह केवल अपने विषय तक ही सीमित न रहकर अपने विद्यार्थियों की प्रत्येक गतिविधियों पर नजर रखें। बच्चे का व्यवहार कैसा है, उसकी संगति कैसी है, वह सच बोलता है या झूठ, उसके अन्दर कौन- कौन से गुण हैं और कौन से अवगुण हैं? अध्यापक को माली की तरह भूमिका निभाकर बच्चों के जीवन को निखारने का प्रयास करना चाहिए। गुरू देवो भवः के आदर्श को मानने वाले देश में शिक्षकों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए किसी एक दिन की जरूरत नहीं , बल्कि उनका आदर तो हमेशा करना चाहिए। आज फिर विरजानन्द जैसे गुरू और दयानन्द जैसे शिष्य की आवश्यकता है। जिस गुरू ने अपने लिए कुछ नहीं मांगा अपितु राष्ट्र का सुधार करने की प्रतिज्ञा को दक्षिणा के रूप में मांगा और जिस शिष्य ने नतमस्तक होकर गुरू की आज्ञा को स्वीकार किया। ऐसे गुरू और शिष्य ही मिलकर राष्ट्र का भविष्य उज्जवल कर सकते है।

एक गुरू ही विद्यार्थी के जीवन में प्रकाश कर सकता है। गुरू सूर्य के समान है जिसके ज्ञान रूपी प्रकाश से राष्ट्र चमक उठता है। आज भी ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सके। अपने विषय से हटकर विद्यार्थियों के जीवन निर्माण में भी रूचि लें, उसके अन्दर सद्गुणों का विकास करें। आज वर्तमान में फिर ऐसे गुरू और शिष्यों की आवश्यकता है जो राष्ट्र को एक नई दिशा दे सकें। शिक्षक दिवस के अवसर पर विद्यार्थियों का कर्त्तव्य बनता है कि वे अपने अध्यापकों का एक दिन के लिए नहीं अपितु जीवन भर सम्मान करें क्योंकि गुरू के द्वारा ही उसने जीवन में सफलता को प्राप्त किया है। इसलिए विद्यार्थियों का कर्त्तव्य है कि वे कभी भी अपने गुरूजनों की अवहेलना न करें, उनके सम्मान को ठेस न पहुँचाए। गुरू ऐसे दीपक के समान है जो स्वयं जलकर दूसरों के जीवन को प्रकाशित करता है। शिक्षक दिवस गुरूओं के प्रति आभार व्यक्त करने का दिवस है। ऐसे अवसर पर सभी गुरू और शिष्य अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने की शपथ लें। तभी शिक्षक दिवस मनाना सार्थक हो सकता है।

5 सितम्बर को भारतीय संस्कृति के संवाहक, प्रख्यात शिक्षाविद्, महान् दार्शनिक, भारत के दूसरे राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का जन्मदिवस प्रतिवर्ष शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्तमान में हमारी शिक्षा नीति में बदलाव हुआ है। नई शिक्षा नीति का लाना तभी सार्थक होगा अगर उसमें नैतिक मूल्यों को उचित स्थान दिया जाए। नैतिक और सदाचार की शिक्षा के बिना कोई भी शिक्षा नीति कारगर सिद्ध नहीं होगी। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि- जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं। शिक्षा में उन नैतिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए जिससे एक विद्यार्थी सभ्य, धार्मिक, अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाला बन सके तथा उसके अन्दर के तमाम अविद्यादि दुर्गुण दूर हो सकें। शिक्षक के अन्दर अपने विद्यार्थियों में इन सभी गुणों को धारण करवाने की क्षमता होनी चाहिए, तभी शिक्षक दिवस मनाना सार्थक हो सकता है।

**प्रेम भारद्वाज**
**संपादक एवं सभा महामन्त्री**

# वेदों में न्याय दण्ड व्यवस्था

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

वेदों में अध्ययन से ज्ञात होता है कि राज्य संस्था का निर्माण मुख्य रूप से निर्बल, निर्धन, धार्मिक सज्जनों की बलवान, अधर्मी, दुष्ट पुरुषों से रक्षा करने हेतु ही किया जाता है। इस विषय में ऋग्वेद का कथन है कि 'हे बड़े तेजस्वी, ऐश्वर्य युक्त, अत्यन्त तरूणावस्था युक्त राजन्। आप हमें धूर्त, कपटी, अधर्मी, दान धर्म रहित, कृपण, महाहिंसक मनुष्य से बचाइये। सबको दु:ख देने वाले मनुष्य से हमें पृथक रखिए और हमें मारने की इच्छा करने वाले शत्रु से हमारी रक्षा कीजिए।'

समाज कण्टकों से सामान्य जन की रक्षा के लिए भी राज्य का होना आवश्यक है। इस विषय में ऋग्वेद में कहा गया है, 'हे जगत् को विद्या से पुष्ट करने वाले विद्वान्। आप पापी, दु:ख में शासन करने योग्य, प्रजा को दु:ख देने वाले चोर से जो उद्देश्य पूर्वक हमें पीड़ा देता है उस दुष्ट स्वभाव वाले को प्रजा से दूर कर दीजिए।'

खेती बाड़ी, धन धान्यादि सब पदार्थों की रक्षा पूर्वक उत्पत्ति और न्याय पूर्वक विभाजन राज्य द्वारा ही संभव है, अन्यथा प्रजा परस्पर भक्ष्य बनकर नष्ट हो जाती है। इसलिए वेद में कहा गया है-'हे राजन्। सोमादिकों को उत्पन्न करते हुए और धान्यादि का न्यायपूर्वक विभाजन करते हुए हम आपकी स्तुति करते हैं। हे बहुधन, बहुबल। आप रक्षित हम जिस धनादि की कामना करें उस प्राप्त करने योग्य धनादि को हमारे लिए प्राप्त कराइये। हम आपकी कृपा से विस्तृत धनों को प्राप्त करें।'

अत: शासक का कर्त्तव्य हो जाता है, प्रजा की रक्षा करना तथा उसके लिए राज्य में न्याय की उचित व्यवस्था करना। वेद के अनुसार राजधानी में एक मुख्य न्यायाधीश तथा दो सहायक न्यायाधीश होते थे। विश (जिले) में एक न्यायाधीश होता था।

मनु स्मृति में विकेन्द्रितकृत शासन व्यवस्था का वर्णन है। वहां कहा गया है कि 'राजा और राज सभा राजकार्य की सिद्धि के लिए ऐसा प्रयत्न करें जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हो जो शासक राज्य पालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है।'

'इसलिए दो, तीन, पाँच और सौ ग्रामों के बीच में एक-एक राजपुरुष को रक्खे। उन्हीं दस ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों पर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों का चौथा और उन्हीं हजार ग्रामों पर पाँचवां पुरुष रक्खे।'

'प्रत्येक ग्राम में एक ग्रामणी होता था जो ग्राम में आई समस्या को वहीं मिल बैठकर हल कर देता था तथा ग्राम में उत्पन्न किसी भी समस्या की सूचना दश ग्रामाधिपति को गुप्तरूप से कह देता था।'

'दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार अपने क्षेत्र में उत्पन्न हुई समस्या को स्वयं हल करता तथा बीस ग्रामाधिपति को उसकी सूचना दे देता था।'

'इसी प्रकार की व्यवस्था हजार ग्रामाधिपति तक चले।'

'नगरों की व्यवस्था अलग थी, वहाँ सचिवालय का निर्माण होता था। राजा बड़े-बड़े प्रत्येक नगर में एक एक जैसे नक्षत्रों के मध्य में चन्द्रमा है इस प्रकार विशाल और देखने में प्रभावकारी, भयकारी कि जिसे देख कर प्रजाओं में नियमों के विरुद्ध चलने में भय का अनुभव हो, जिसमें सब राजकार्यों के चिन्तन और प्रजाओं की व्यवस्था और कार्य के संचालन का प्रबन्ध हो ऐसा ऊँचा भवन अथवा सचिवालय बनावे।'

अब हम वेद के विचार देखते हैं। वेद में शासन की ईकाई ग्राम को माना गया है। ग्राम में पंचायत द्वारा आपसी झगड़े निपटाये जाते हैं। ग्राम पंचायत का मुखिया ग्रामणी कहलाता है। उसके अतिरिक्त कुछ सरकारी कर्मचारी भी ग्राम में होते हैं। सभी सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्ति चरित्रवान, विद्वान् तथा प्रजापालक हों इस प्रकार का वेद में उल्लेख है। वहाँ कहा गया है-'हे बलशाली, ऐश्वर्यवान्, राजन्। आप अन्याय से दूसरे के धन को हरण करने वाले दुष्ट राज पुरुषों के लिए हम लोगों को मत दीजिए और हम लोग आप धनवानों के मित्रपन के लिए क्रुद्ध नहीं होवें। जो प्राचीन सुखकारक क्रियाएं हैं उनको दीजिए। अनुत्पादक लोगों को त्याग दीजिए। दुर्जन कर्मचारियों से हमें दूर कीजिए।'

राजा या प्रधान शासक को न्याय के क्षेत्र में भी विशेषाधिकार प्राप्त है। वह प्रधान न्यायाधीश द्वारा दिये गये निर्णय में भी परिवर्तन कर सकता है। प्रजा का साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपने प्रति किये गए अन्याय के विषय में राजा तक अपनी पुकार कर सकता है। सर्वोच्च शासक का यह कर्त्तव्य है कि उसे निडर होकर बिना किसी झिझक के अपना पक्ष उसके सामने प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित करे। यदि वास्तव में उसके साथ अन्याय हुआ हो तो राजा उसे न्याय दिलावे। राजा के ध्यान में यह बात सदैव रहे कि दोषी व्यक्ति दण्ड से न बच सके और निर्दोष व्यक्ति दण्ड का भागी न बने।

स्त्रियों से सम्बन्धित मामले स्त्रियों के न्यायालय में सुने जावें। इस विषय में यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है, 'हे रानी। आप सुख स्वरूप हैं। सुन्दर व्यवहार करने वाली है। इसलिए आप अच्छी सुख कारक अच्छी शिक्षा में अच्छे प्रकार व्यस्त हूजिए। आप राज्य में महिलाओं का न्याय करने वाली है। अच्छे प्रकार सुख देने वाली विद्या को अनेक प्रकार से प्राप्त कीजिए तथा अन्य को भी प्राप्त कराइये। क्षत्रिय कुल की राजनीति सब स्त्रियों को जनाइये।'

रानी के नेतृत्व में स्त्रियां न्यायाधीश का कार्य करें। इस का उल्लेख अथर्ववेद में इस प्रकार है 'इसके अतिरिक्त राजाओं अथवा विद्वानों की पत्नियां, ऐश्वर्यवान रानी, अग्नि समान तेजस्वी पुरुष की पत्नी, शीघ्रगामी पुरुष की पत्नी वाणियों को प्राप्त हों। अर्थात् न्याय करें। रूद्र की पत्नी श्रेष्ठ जन की पत्नी वाणियों को सुने, जो स्त्रियों के न्याय का काल है। उसकी चाहना करें।'

अपराधी को दण्ड मिलना चाहिये। मनुस्मृति में कहा गया है, जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्ता और सबका शासन कर्ता, वही चारों वर्ण और चारों आश्रमों के धर्म की जामिन है।'

'वास्तव में दण्ड विधान ही सब प्रजाओं पर शासन रखता है। दण्ड ही प्रजाओं की सब ओर से रक्षा करता है। सोती हुई प्रजाओं में दण्ड ही जागता रहता है अर्थात् प्रमाद और एकान्त में होने वाले अपराधों के समय दण्ड का ध्यान ही उन्हें भयभीत करके उनसे रोकता है। दण्ड का भय ऐसा भय है जो सोते हुए भी बना रहता है इसलिए बुद्धिमान लोग दण्डविधान को राजा का प्रमुख धर्म मानते हैं।'

आगे कहा गया है कि 'बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादाएं छिन्न भिन्न हो जाएं। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों को आक्रोश हो जावे।'

न्यायानुसार दण्ड देने से राजा की यशवृद्धि होती है। कहा गया है, न्याय पूर्वक दण्ड का व्यवहार करने वाले राजा का, धनहीन राजा का भी यश, जैसे पानी पर डालने से तेल की बूँदें चारों ओर फैल जाती हैं ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् में फैल जाता है।

'मनु के अनुसार रिश्वत खोर कर्मचारियों पर दृष्टि रखी जानी चाहिये। पापी मनवाले जो रिश्वत खोर और ठग राजपुरुष यदि काम कराने वाले और मुकद्दमें वालों से रिश्वत ले ही ले तो उनका सब कुछ हरण करके राजा उन्हें देश निकाला दे।'

मनु ने सब प्रकार के अपराधों को अठारह भागों में विभाजित किया है। 'अठारह अपराध इस प्रकार हैं- 1. किसी से ऋण लेने देने का विवाद, 2. धरोहर के मामले में विवाद, 3. दूसरे के पदार्थ को बेच देना, 4. मिल मिलाकर किसी पर अत्याचार करना, 5. दिये हुए पदार्थों को न देना, 6. वेतन न देना अथवा कम देना, 7. प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्तना, 8. क्रय-विक्रय में झगड़ा करना, 9. पशु के स्वामी और पालने वालों का झगड़ा, 10. सीमा का विवाद, 11-12, किसी को कठोर दण्ड देना, कठोर वाणी से बोलना, 13. चोरी अथवा डाका डालना, 14. किसी काम को बलात्कार से करना, 15. किसी स्त्री और पुरुष का व्यभिचार होना, 16. स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम में होना, 17. दाय भाग में विवाद उठना, 18. द्यूत में जड़ पदार्थ अथवा चेतन पदार्थ को दाव पर लगाना।'

'वादी और प्रतिवाद दोनों को न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित होकर अपनी बात को बतलाने का अवसर दिया जाता है। वे यदि अपनी बात को स्वयं समझाने में असमर्थ हो तो प्राडविवाक का उपयोग कर सकते हैं। साथ ही उनके अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए न्यायाधीश के सामने गवाह भी उपस्थित करने का अधिकार है। वादी और प्रतिवादी के सामने ही साक्षी की गवाही लेनी चाहिये, परोक्ष में कभी नहीं। यदि साक्षी आज्ञा देने पर भी साक्षी देने को तैयार नहीं होता तो वह दण्डनीय होता है।'

'साक्षियों को बुलाकर विशेष रूप से ईश्वर की शपथ दिलाकर और पुराणोक्त सत्य बोलने के धर्म का माहात्मय बताकर उनसे गवाही लेनी चाहिये। झूठ बोलने में पुराणोक्त अनेक दोष बताकर धीरे-धीरे उन्हें अत्यन्त भयभीत करें।'

'सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान, निष्कपटी, सब प्रकार के धर्म को जानने वाले, लोभरहित, सत्यवादियों को न्याय व्यवस्था में साक्षी करे। इसके विपरीत को कभी न करे।'

असत्य साक्षी देने पर दोषानुसार दण्ड व्यवस्था की गई है। 'लोभ आदि कारणों में से किसी कारण के होने पर जो कोई झूठी साक्षी देता है,

(शेष पृष्ठ 6 पर)

# ''आर्य समाज एक अद्वितीय धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय संगठन है''

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून

संसार में किसी विषय पर सत्य मान्यता एक व परस्पर पूरक हुआ करती हैं जबकि एक ही विषय में असत्य मान्यतायें अनेक होती व हो सकती हैं। संसार में ईश्वर व धर्म विषयक मान्यतायें भी एक समान व परस्पर एक दूसरे की पूरक होती हैं। इसी कारण से संसार में ईश्वर एक ही है यद्यपि उसके अनेकानेक गुण, कर्म व स्वभावों के कारण उसके अनेक नाम हैं। ईश्वर का मुख्य नाम ''ओ३म्'' है और उसके अन्य सब नाम गौणिक, उसके कर्मों तथा उससे हमारे सम्बन्धों के सूचक हैं। श्रेष्ठ कर्मों के समुच्चय व क्रियाओं को धर्म की संज्ञा दी जाती है। अग्नि का गुण दाह, प्रकाश वा रूप आदि होता है। यही अग्नि का धर्म है। इसी प्रकार वायु का गुण स्पर्श है। वायु का हम श्वास लेने में उपयोग करते हैं। अत: प्राणियों को श्वास लेने में सहयोगी पदार्थ को वायु कहा जाता है। वायु का धर्म है कि वह प्राणियों को श्वास लेने में सहायता दे। इसका यह गुण ही उसका धर्म है। इसी प्रकार से मनुष्य का धर्म भी सत्य ज्ञान व उस पर आधारित क्रियायें वा कर्म होते हैं जिससे मनुष्य का अपना तथा दूसरे मनुष्यों व प्राणियों का कल्याण होता है। धर्म का शब्दार्थ है, मनुष्य द्वारा धारण करने योग्य गुण, कर्म व स्वभाव। सब मनुष्यों को सत्य अर्थात् सत्य गुणों व कर्मों को धारण करना चाहिये। इसी से मनुष्य का कल्याण होता है। अत: सत्य गुणों को धारण करना ही मनुष्य का धर्म होता है। मत मतान्तर तो अनेक हो सकते हैं व हैं भी, परन्तु धर्म सभी मनुष्यों का एक ही होता है।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, सर्वव्यापक, अनादि, नित्य व सृष्टिकर्ता है। यह विचार व मान्यता सत्य है, इस कारण इसका प्रत्येक मनुष्य को मानना धर्म है। जो ऐसा नहीं करता व नहीं मानता वह धार्मिक कदापि नहीं कहा जा सकता। सत्य व सत्यधर्म को न मानने वाला मनुष्य आकृति मात्र से ही मनुष्य होता है परन्तु गुण, कर्म व स्वभाव की दृष्टि से उसे सदाचार व सज्जन मनुष्य नहीं कहा जा सकता। जो मनुष्य व संगठन सत्य को स्वीकार न करें, उसका अस्तित्व देश व समाज के लाभ के लिये न होकर उनके लिये हानि करने वाला सिद्ध होता व हो सकता है। अत: मनुष्य व समाज को अपने सभी कार्यों में सत्य को सर्वोपरि स्वीकार करना चाहिये। आर्यसमाज ऐसा ही संसार का एकमात्र संगठन है जो मनुष्य व समाज में प्रत्येक विचार व मान्यता की परीक्षा कर सत्य का स्वीकार व असत्य का त्याग करता व कराता है। इस कारण से संसार में कोई संगठन आर्यसमाज के समान महान उद्देश्यों से युक्त दृष्टिगोचर नहीं होता। आर्यसमाज में आकर मनुष्य की बुद्धि का अधिकतम वा पूर्ण विकास होता व हो सकता है और वह देश व समाज के लिये लाभदायक एवं हितकर मनुष्य सिद्ध होता है। सत्य को मानने व आचरण में लाने के कारण संसार के रचयिता व पालनकर्ता ईश्वर का प्रेम, स्नेह, आशीष तथा कृपा भी सच्चे मनुष्य वा आर्यसमाज के निष्ठावान अनुयायी को प्राप्त होती है। उसका शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक विकास होता है। आत्मिक विकास केवल और केवल सत्य को मानने व उसके अनुसार आचरण करने वालों का ही होता है अन्यों का नहीं, ऐसा हमें वैदिक साहित्य को पढ़कर व समाज में लोगों का जीवन देखकर अनुभव होता है।

आर्यसमाज से जुड़कर हम सीधे परमात्मा व उसके सब सत्य विद्याओं से युक्त ज्ञान ''चार वेदों'' से जुड़ जाते हैं। परमात्मा से तो संसार के बहुत से लोग जुड़े हैं परन्तु सबमें यह विशेषता नहीं है कि वह ईश्वर के जिस स्वरूप व गुण, कर्म व स्वभावों को मानते हैं उनकी सत्यता की परीक्षा कर सकें व उनके आचार्यों द्वारा ऐसा किया गया व किया जाता हो। ईश्वर के सत्यस्वरूप व गुण, कर्म व स्वभावों की परीक्षा आर्यसमाज के साथ जुड़कर करने का अवसर मिलता है तथा ईश्वर के सत्यस्वरूप को जानकर उसके अनुसार ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करने का अवसर भी सुलभ होता है। ईश्वर के सत्यस्वरूप को जानने व उसकी उपासना करने से अनेक लाभ होते हैं। ईश्वर एक अनादि व नित्य सत्ता है जो संसार में अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगी। हम जीव हैं और हम भी अनादि व नित्य सत्ता हैं। हमारी न तो उत्पत्ति हुई है न कभी नाश होगा। ईश्वर व जीव अर्थात् मैं और मेरा परमात्मा दोनों सनातन व नित्य होने के कारण अनादिकाल से एक दूसरे के मित्र व सखा हैं। ईश्वर से हमारा व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक, स्वामी सेवक तथा पिता-पुत्र आदि का सम्बन्ध है। ईश्वर अजन्मा है तथा जीव जन्म-मरण धर्मा है। जीवात्मा का जन्म व मृत्यु होती रहती है। हमें हमारा जन्म हमारे पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार मिलता है। हमारे कर्मानुसार हमें मनुष्य व देव तथा पशु-पक्षी आदि योनियों में भी जन्म मिल सकते हैं। मनुष्य योनि में सुख अधिक तथा दु:ख कम होते हैं। अन्य योनियों में मनुष्य योनि से अधिक दु:ख व कष्ट होते हैं। मनुष्य योनि इससे पूर्व की मनुष्य योनि में अधिक पुण्य व शुभ कर्म करने से मिलती है।

ईश्वरोपासना तथा अग्निहोत्र यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों को करने से मनुष्य योनि में देवों का शरीर मिलना सम्भव होता है। यह लाभ हम आर्यसमाज से जुड़कर तथा वेदाचरण कर अपने परजन्मों में प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये हमें ईश्वरीय कर्म-फल विधान का ज्ञान होना चाहिये और हमें ईश्वर द्वारा वेदों में मनुष्य के विहित कर्मों को जानकर उनका सेवन करना चाहियें। आर्यसमाज से जुड़ने व इसका सक्रिय सदस्य बनने पर वैदिक साहित्य का अध्ययन वा स्वाध्याय करने का अवसर मिलता है। इससे मनुष्य की आत्मिक उन्नति होने से वह ईश्वरीय ज्ञान वेद व मनुष्य जीवन के अनेकानेक व सभी रहस्यों से परिचित हो जाता है। इससे यह लाभ होता है कि मनुष्य सुख देने वाले कर्मों को ही करता है जिन कर्मों का परिणाम दु:ख होता है, उन्हें जानकर उनको करना छोड़ देता है। वेदानुयायी मनुष्य यह जानता है कि राग व द्वेष दोनों मनुष्यों के लिये हानिकर होते हैं। इनके वशीभूत जो कर्म होते हैं वह परिणाम में दु:ख देते हैं। अत: वह राग व द्वेष को जानकर उनके स्थान पर वैराग्य के विचारों तथा द्वेष मुक्त होकर सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान जानकर अपनी और सबकी उन्नति के लिये पुरुषार्थ करता है। ऋषि दयानन्द और अन्य वैदिक महापुरुषों स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी आदि के जीवन में हम साक्षात ऐसा होता हुआ देखते हैं।

आर्यसमाज से जुड़कर हमें वेदों का महत्व बताने वाला तथा प्राय: सभी वैदिक मान्यताओं से परिचित कराने वाला और साथ ही सत्य व असत्य का स्वरूप प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ ''सत्यार्थप्रकाश'' ग्रन्थ पढ़ने को मिलता है। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में मनुष्य के जीवन के लिये उपयोगी सभी विषयों का वेद प्रमाणों से युक्त तर्क एवं युक्ति संगत ज्ञान प्रस्तुत किया है। इससे मनुष्य की सभी भ्रान्तियां एवं आशंकायें दूर हो जाती है। वह ईश्वर व जीवात्मा विषयों सहित संसार एवं अपने जीवन सम्बन्धी विषयों को यथार्थरूप से जानने में समर्थ होता है। उसे यह भी विदित होता है वेद मत से इतर सभी मतों में अविद्या विद्यमान है। इसका दिग्दर्शन सत्यार्थप्रकाश के ग्रन्थकार ऋषि दयानन्द जी ने इस ग्रन्थ के उत्तरार्ध के चार समुल्लास लिखकर कराया है। इनसे यह लाभ होता है कि हम सभी मत-मतान्तरों की अविद्या से परिचित हो जाते हैं और उसे छोड़कर जीवन में होने वाली अनेक हानियों से बच जाते हैं। इनसे हमारा समय भी बचता है व हम उनका सत्कर्मों में सदुपयोग करते हैं। उस समय को हम ईश्वर की उपासना, अग्निहोत्र व देश तथा समाज के हित के कार्यों में कर सकते हैं।

आर्य समाज का महत्व आर्यसमाज का सक्रिय सदस्य बनकर तथा आर्यसमाज तथा समस्त वैदिक साहित्य का अध्ययन कर ही विदित होता है। हम यहां बानगी के तौर पर आर्यसमाज के 10 नियमों को प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसे स्वर्णिम नियम हमें किसी मत व संगठन में दृष्टिगोचर नहीं होते। अत: अपने मनुष्य जीवन की उन्नति करने का उद्देश्य लिये हुए बन्धुओं को आर्यसमाज की शरण में आकर अपने जीवन की उन्नति करनी चाहिये और अपने परजन्म को भी सुरक्षित व सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। आर्यसमाज के दस नियमों में प्रथम नियम है 1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है। दूसरा नियम है ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अन्त, निर्विकार, अनादि,

(शेष पृष्ठ 7 पर)

## पृष्ठ 4 का शेष-वेदों में न्याय दण्ड व्यवस्था

उसके लिए दण्ड व्यवस्थाओं को क्रमशः कहा गया है।'

अपराधियों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है-सामान्य अपराधी, शिक्षित अपराधी तथा वेदों का विद्वान् अथवा उच्च पदस्थ राजकर्मचारी इनमें से प्रत्येक वाद वाले को पहले वाले से अधिक दण्ड दिया जायेगा। विभिन्न अपराधों के लिए दी जाने वाली सजा भी मनुस्मृति में घोषित है। इस लेख में उन सभी का दिया जाना संभव नहीं है। रिश्वत लेकर अन्याय करने वाले न्यायाधीशों को भी दण्ड देने का प्रावधान है।

'मंत्री अथवा न्यायाधीश जिस मुकद्दमें के निर्णय को गलत अथवा अन्याय पूर्वक कर दें तो उस मुकद्दमें को राजा स्वयं करे और अन्याय पूर्वक निर्णय करने वाले उन अधिकारियों को एक हजार पण से दण्डित करे।'

'इसी प्रकार निर्णयों में कपट व्यवहार करने वालों को भी दण्डित करने की व्यवस्था मनुस्मृति में की गई है। दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत हम यहाँ केवल चोरों को दिये जाने वाले दण्ड पर विचार करेंगे। जो चोर रात्रि में सेंध मार कर चोरी करते हैं। राजा उनके हाथ काटकर तेज शूली पर चढ़ा दे।'

'राजा चोरों को अग्नि, भोजन, शस्त्र, स्थान देने वाले और चोरी के माल को रखने वाले लोगों को भी चोर की ही तरह दण्डित करे।'

'स्त्री-पुरुष धर्म सम्बन्धी विवाद और उनका निर्णय' विषय पर भी मनुस्मृति अध्याय 9 के श्लोक संख्या 102 तक विचार किया है। फिर श्लोक संख्या 103 से श्लोक संख्या 176 तक दाय भाग विषयक विवाद के विषय में तथा श्लोक संख्या 192 से श्लोक संख्या 221 तक मातृ धन का विभाग कैसे हो इस पर विचार किया है।

मनुस्मृति को वैदिक राष्ट्र का संविधान माना जा सकता है। इसमें राजकार्य सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर पर्याप्त विवरण उपलब्ध है। इसके विपरीत वेद सम्पूर्ण विश्व को 'भवेत्येक नीडम्' मानकर चलता है और उसमें प्राणी मात्र की सुरक्षा तथा सम्वर्धन के उपाय सुनाये गए हैं। अब हम पुनः वेद की ओर जाते हैं। वेदों में भी सभी तरह के अपराधों एवं उनके दण्ड विधान की व्यवस्था की गई है। एक एक मंत्र में ही अपराध तथा उसके दण्ड की व्यवस्था वेदों में है। पाठकों के लिए हम वेद के कुछ मंत्र दे रहे हैं। वेद के अनुसार कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी हो अपराध करने पर दण्ड अवश्य भुगते। विशेषकर राष्ट्र द्रोही व्यक्ति दण्ड से बचने न पाये। अथर्ववेद में कहा गया हे, 'हे विजयी पुरुषो। यह व्यक्ति राजद्रोही होकर उस स्थान से कुछ कुमन्त्र करना चाहता है। अग्नि समाज तेजस्वी राजा उसको अन्न नहीं पहुँचावे। व्यवहार कुशल लोग उसकी पुकार को नहीं सुनें। मेरी ही पुकार को तुम लोग आकर प्राप्त होओ।'

इसी विषय को विस्तार देते हुए कहा गया है,

**यममी पुरोदधिरे ब्रह्माण्य भूतये। इन्द्र से ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यो।**

अर्थात् इन शत्रुणों ने जिस वृद्धशील पुरुष को हमारी हार के लिए उच्च पद पर रखा है। हे ऐश्वर्य सम्पन्न राजन्। उसको मैं तेरे पैर के नीचे मृत्यु के लिए प्रतिकूलता से फैंकता हूँ। इस मंत्र में बताया गया है कि बड़े पदों पर नियुक्त लोग धन और पद के लालच में शत्रुओं से मिल कर राज्य को संकट में डाल देते हैं अतः उच्च पदस्थ कर्मचारियों पर भी कड़ी दृष्टि रखी जानी चाहिए तथा उनके आचरण में थोड़ा सा भी अन्तर आवे तो उसकी परीक्षा करके उचित निर्णय लेना चाहिए। रात्रि के अन्धकार में घात लगाकर सेंध मार कर चोरी करने वाले चोर के लिए वेद में कहा गया है, 'आज जो पाप चीतने वाला वैरी चोर मनुष्य आवे। रात्रि प्रतीती करके उसके गले को सर्वथा शिर को सर्वथा तोड़ डाले।'

उसके दोनों पैरों को सर्वथा तोड़ डाले। जिससे वह चल न सके। उसके दोनों हाथों को भी सर्वथा तोड़ डाले जिससे वह भोजन भी न कर सके। जो मलिन आचरण करने वाला लुटेरा पास आवे। वह निकल जावे, वह सर्वथा निकल जावे अर्थात् वह राष्ट्र से निकाल दिया जावे। सूखे स्थान में निकल जावे अर्थात् उसे रेगिस्तान में छोड़ दिया जावे।'

'जो मनुष्य सर्प और भेड़िये आदि के समान रात्रि में आकर दुःख देवे तो सांप के सिर के समान उसके सिर को काट कर फैंक दे अथवा भेड़िये की दोनों आंखें निकाल कर फेंक दे। उसे काठ के बन्धन में मार डाले।'

भोजन सामग्री, दूध, घी, तेल, मसाले आदि में मिलावट करने वालों को कड़ा दण्ड दिये जाने का प्रावधान भी वेद में दिया गया है। वेद में कहा गया है, 'जिस पिशाच समूह ने कच्चे, अच्छे पके, चितकबरे, अथवा विविध प्रकार पके हुए भोजन में मुझे धोखा दिया उससे वे मांस भक्षक अपने शरीर और प्रजा के साथ विविध प्रकार की पीड़ा पावे और यह पुरुष नीरोग हो जावे।'

फिर आगे कहा गया है 'जिस किसी ने दूध में अथवा मट्ठे में अथवा जिसने बिना जुते हुए खेत से उत्पन्न हुए भोजन में अथवा यव आदि अन्न में मुझे धोखा दिया है। उससे वे मांस भक्षक अपने जीवन और प्रजा के साथ विविध प्रकार से पीड़ा पावे और यह पुरुष नीरोग हो जावे।'

'जो घोड़ों अथवा गायों को मारकर उनका मांस खावे उसे भी दण्ड मिले जो कोई दुःख दायी जीव पुरुष वध से प्राप्त मांस से, जो घोड़े के मांस से, और पशु से अपने को पुष्ट करता है। और जो नहीं मारने योग्य गाय के दूध को नष्ट करता है। हे अग्नि स्वरूप तेजस्वी राजन्। उसके शिर को अपने बल से काट डाल।'

सरकारी काम में बाधा डालने वालों के लिए वेद में कहा गया है, 'जो दुष्ट शीघ्रगामी पुरुषार्थी पुरुषों के साथ वर्तमान दृढ़ स्तुति वाले पुरुष को विशेष करके नष्ट करते हैं अथवा आत्मा धारणाओं के साथ रहने वाले कल्याण को दूषित करते हैं। ऐश्वर्यवान् राजा अवश्य उन्हें सर्प समान, क्रूर पुरुष को प्रदान जप्त कर लेवे।'

'बड़े डाकुओं को पकड़कर एकान्त कैद में सब प्रकार की सुख सुविधाओं से रखे और समय आने पर युद्ध में अथवा अपराधियों को पकड़ने में उनसे सहयोग ले। वेद में कहा गया है, 'हम लोग अग्नि के समान तेजस्वी राजा के साथ मिलकर तेज स्वभाव वालों को जीतने की इच्छा करते हैं तथा शीघ्र ही दूसरों के पदार्थों को हरण करने वाले, दूसरे का धन हड़पने के लिए यत्न करते हुए डाकू पुरुष को दूसरे देश से युद्ध के लिए बुलावें। वह डाकू के तिरस्कार करने योग्य बल को बड़े-बड़े रमण के साधन वाले हिंसक दुष्ट पुरुष को यहां कैद में रक्खें।'

'अपराधी चाहे आर्य हो अथवा अनार्य उसे दण्डित अवश्य किया जाना चाहिए। इस विषय में वेद में कहा गया है, 'हे राजन्। मारने की इच्छा करने वाले, अभिद्रोह करने वालों को शस्त्र को अन्तर्हित कर दो। हे धनों के स्वामी। दस्यु का हो आर्य का हो उसके आयुध को अन्तर्हित पृथक कर दो।'

सरकारी तथा जनता की सम्पत्ति की तोड़ फोड़ करने वालों को भी दण्ड मिले। 'हे तेजस्वी राजन्। तोड़ फोड़ करने वाले प्रजा पीड़क राक्षस को तीक्ष्ण विष से जला दो। अपने तीव्र शस्त्र से तपे हुए अग्रगामी शस्त्रों से उसे जला दो।'

वाणिज्य आदि व्यवसायों में कुटिल पुरुषों को दण्ड देना अत्यन्त आवश्यक है, यदि ऐसा नहीं किया गया तो व्यापार चौपट हो जावेगा। 'हे ऋषि' आप राजा और मंत्रीमण्डल के सदस्यों को अच्छी प्रकार प्रकाशित कीजिए। वे आपकी प्रार्थना को अनेक बार सुनेंगे। कुटिल पुरुष को दण्ड देकर दूर रखेंगे।'

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मानना यह है कि अपराध करने पर राजा-रानी को भी दण्ड दिया जाना चाहिए। जब उनसे प्रश्न किया गया कि राजा अथवा रानी को उनके अपराध का दण्ड कौन दे सकेगा? तब उन्होंने उत्तर दिया कि राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उस को दण्ड नहीं दिया जाए और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों ग्रहण करेंगे? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभी धार्मिकता से दण्ड देना चाहे तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा, प्रधान और सब पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा कर सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जावें।

अब हम वेद में दण्ड की कठोरता के विषय में चर्चा कर विषय को समाप्त करेंगे। स्वामी दयानन्द सरस्वती से पूछा गया है कि यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं है क्योंकि मनुष्य किसी को बनाने वाला या जिलाने वाला नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड नहीं देना चाहिये? उत्तर-जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते। क्योंकि एक पुरुष को ऐसा दण्ड देने से सब लोग बुरे काम से दूर रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थिर रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आयेगा। और जो सुगम दण्ड दिया जाये तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगेंगे। वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुणा अधिक होने से करोड़ों गुणा अधिक होता है। क्योंकि सब मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तो थोड़ा थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा। वास्तव में स्वामी जी की यह सोच वर्तमान में भारत में स्पष्ट दिखाई दे रही है। दण्ड न मिलने से अथवा बीसों वर्षों में भी दण्ड का निपटारा न होने से भारत संसार का सबसे भ्रष्टतम देश बन गया है। इति।

## पृष्ठ 2 का शेष-अर्जुन विषादः एक दृष्टि

कहा-हे कृष्ण! मुझे राज्य सुख भोग कुछ भी नहीं चाहिए। स्वजनों के वध से पृथिवी क्या, त्रिलोकी का भी राज्य मुझे अभीष्ट नहीं है। ये कौरव अन्धे हैं, इन्हें अपना पाप नहीं दिखाई देता, पर जिसकी आँख है उसे तो सच्चाई दृष्टिगोचर होती है। युद्ध भी किसलिए? कुलधर्म की रक्षा के लिए, जातिधर्म तथा राष्ट्रधर्म की रक्षा के लिए? पर इन्हीं धर्मों का ही तो इस गृहयुद्ध से नाश होगा। महाराज! मुझसे अब कथमपि युद्ध नहीं होगा। मेरा कल्याण तो इसमें ही है कि धृतराष्ट्र के पुत्र मुझ शस्त्रहीन को युद्ध में शस्त्रों से मार डाले' यह कहते हुए अर्जुन गाण्डीव धनुष तथा कभी रिक्त न होने वाले तरकश को नीचे रखकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। विषाद की चरम सीमा पर पहुँचे हुए अर्जुन को कृष्ण ने जो उपदेश दिया, वह मात्र अर्जुन के लिए ही नहीं, जन जन के लिए संजीवनी अमृत बन गया।

यह सत्य है कि पर्याप्त ऊहापोह के पश्चात् अन्त में कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए सहमत कर लिया, किन्तु युद्ध न करने के पक्ष में अर्जुन ने जो तर्क दिए वे सत्य सिद्ध हुए। पाण्डवों ने विजयश्री का अवश्य वरण किया, राज्य भी हस्तगत किया, किन्तु इस युद्ध में विनाश का जो महाताण्डव हुआ उसमें कई निरापराध जन, पण्डित, ज्ञानी, वेदज्ञ, महारथी, सब युद्ध की भीषण ज्वाला में भस्म हो गए। विशाल सैन्यशक्ति नष्ट हुई। धृतराष्ट्र के पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा-

**दशाननामयुतं सहस्राणि च विंशतिः।**
**कोटयः षष्ठिश्च षट् चैवास्मिन् राजन् युधे हतः।।**

अर्थात् हे राजन्! इस युद्ध में 66 करोड़ एक लाख तीस हजार सेना मारी गयी।

गान्धारी अपने पुत्रों के शवों के पास करूणक्रन्दन करती हुई भीम से कहने लगी-

**वृद्धस्यास्य शतं**
**पुत्रान्निर्घ्नस्वमपराजितः।**
**कस्मान्न शेशयेः किञ्शिचे-द्येनाल्प मदराजितम्।।**
**सन्तानभावयोस्तात**
**वृद्धयोर्हतराज्ययोः।**
**कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता।।**

अर्थात् हे भीम! तुम्हारी यह कैसी विजय है? कि तुमने वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को मार डाला। इनमें से किसी एक ने यदि थोड़ा अपराध किया था तो उसे तो छोड़ देना चाहिए था। हम वृद्ध दम्पति का राज्य छीना और सन्तानें भी मारी। तुमने हम दो अन्धों की एक भी आधारभूत लकड़ी नहीं छोड़ी।

रानियाँ युधिष्ठिर से पूछ रही थी-

**किं नु राज्येन ते कार्यं पितृन्भ्रातृ न्पश्यतः**
**अभिमन्युं च दुर्धर्ष द्रौपदेयांश्च भारत।।**

अर्थात् हे युधिष्ठिर! अपने पिता, भ्राता, महापराक्रमी अभिमन्यु और अन्य द्रौपदी पुत्रों के बिना राज्य प्राप्त करने में तुमको कैसा लगेगा?

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के समक्ष युद्ध के पक्ष में यह युक्ति प्रस्तुत की थी कि यदि तू युद्ध में मारा गया तो तू मोक्षगामी बनेगा और यदि विजयी हुआ तो पृथ्वी पर राज्य करेगा। इस प्रकार मृत्यु और विजय दोनों में ही तुझे लाभ मिलेगा।

इतिहास साक्षी है कि ये दोनों बातें प्रायः आंशिक ही सत्य सिद्ध हुई। अर्जुन की मृत्यु नहीं हुई, अतः वह मोक्षगामी नहीं बन सका। विजय अवश्य मिली, राज्य भी अधिगत हुआ, पर पाण्डवों की दृष्टि में यह विजय भी पराजय सम ही थी।

युधिष्ठिर का परिताप पठितव्य है-

**सौभद्रं द्रौपदेयांश्च गातयित्वा सुतान् प्रियान्।**
**जयो अयमजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे।।श. पर्व**

अर्थात् सुभद्राकुमार अभिमन्यु तथा द्रौपदी के प्रियपुत्रों को मरवाकर मिली हुई वह विजय भी मुझे पराजय सी प्रतीत हो रही है

**आमिषे गृध्यमानानामशुभं वै भानामिव।**
**आमिषं चैव नो दृष्टिमामिषस्य विवर्जनम्।।शा. पर्व**

जैसे मांसलोभी कुत्तों को अशुभ की प्राप्ति होती है, वैसे ही राज्य में आसक्त हुये हम लोगों को भी अनिष्ट प्राप्त हुआ, अतः हमारे लिए मांसतुल्य राज्य की प्राप्ति अभीष्ट नहीं है, अपितु उसका परित्याग ही अभीष्ट है।

**न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः।**
**न गवाश्वेन सर्वेण ते त्याज्या इमे हताः।।शा. पर्व**

हमारे जिन बन्धुबान्धवों का संहार हुआ है उनका त्याग तो हमें सम्पूर्ण पृथिवी, स्वर्ण राशि और समस्त गाय घोड़े पाकर भी नहीं करना चाहिए था।

**हताः शूराः कृतं पापं विषयः स्वो विनाशितः।**
**हत्वा नो विगतो मन्युः शोको मां रून्धयत्ययम्।।शा. पर्व**

हमने शूरवीरों को मौत के घाट उतारा, पाप किया और अपने ही राष्ट्र का विनाश किया। शत्रुओं को मारकर हमारा क्रोध तो दूर हुआ, परन्तु बन्धुबान्धवों के मारे जाने का शोक मुझे निरन्तर व्यथित कर रहा है।

वस्तुतः युद्ध से पूर्व युद्ध न करने के पक्ष में अर्जुन ने कृष्ण के समक्ष जो मार्मिक युक्तियाँ प्रस्तुत की थी, उन सब का साकार रूप अब युधिष्ठिर के समक्ष था। वह भी अब गहरे क्षोभ तथा पश्चाताप की ज्वाला में जल रहा था, किन्तु द्रौपदी, भीम, नकुल, व्यासमुनि, श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह द्वारा उद्‌बोधित करने पर इन्द्रप्रस्थ का राजा बनना स्वीकार कर लिया और दीर्घ समय तक उनकी पीढ़ी राज्य करती रही, किन्तु अर्जुन ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य सिद्ध हुई। महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदज्ञ विद्वानों, पण्डितों, धर्मशास्त्र आदि के सच्चे वेत्ताओं के अभाव में धर्म, संस्कृति, जाति, समाज, पुरातन परम्पराओं तथा मानवीय नैतिक मूल्यों का जो ह्रास और पतन हुआ, उसे कोई रोक न पाया।

## शोक समाचार

महर्षि दयानन्द मठ वेद मन्दिर ढन्न मोहल्ला के भूतपूर्व महामन्त्री स्व. श्री यशपाल आर्य के सुपुत्र श्री विनीत आर्य का कोरोना महामारी से छोटी आयु में गत दिनों निधन हो गया। श्री विनीत आर्य धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। अपने पूज्य पिता स्व. श्री यशपाल जी आर्य के पदचिह्नों पर चलते हुए अपने घर में प्रतिदिन यज्ञ करते थे। उन्होंने डी. ए. वी. कालेज जालन्धर से संस्कृत विषय में एम.ए. की थी। महर्षि दयानन्द मठ के हर कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। उनके चेहरे पर हमेशा मुस्कान रहती थी। उनके इस प्रकार असमय इस संसार से चले जाने से परिवार पर अकस्मात् वज्रपात हुआ है।

महर्षि दयानन्द मठ वेद मन्दिर ढन्न मोहल्ला के सभी अधिकारी व सदस्य श्री विनीत आर्य जी के निधन पर गहरा शोक व्यक्त करते हैं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्‌गति प्रदान करे तथा शोक संतप्त परिवार को इस असहनीय दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें। दुःख की इस घड़ी में महर्षि दयानन्द के सभी सदस्य शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

**-सत्यशरण गुप्ता मन्त्री महर्षि दयानन्द मठ ढन्न मोहल्ला**

## पृष्ठ 5 का शेष-''आर्य समाज एक अद्वितीय धार्मिक,...

अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। तीसरा नियम है ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'' आर्यसमाज का चौथा नियम है, सत्य के ग्रण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।' अन्य नियम हैं-5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।6. संसार का उपकार करना इस (आर्य) समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। 7. सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। 9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। अन्तिम दसवां नियम है। सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।' इन नियमों की दृष्टि से भी आर्यसमाज एक सार्वभौमिक संगठन व आन्दोलन सिद्ध होता है जिसका उद्देश्य मनुष्य, समाज व विश्व का उपकार करना है। आर्यसमाज सत्य का ग्रहण कराता और असत्य को छुड़वाता है। इसके साथ ही आर्यसमाज अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि के प्रयत्न करता है। इन सभी कार्यों व अपने स्वर्णिम इतिहास के कारण आर्यसमाज विश्व का सर्वोत्तम संगठन है जो वैदिक सत्य धर्म का प्रचार व प्रसार तथा संवर्धन करता है। सभी मनुष्यों को आर्यसमाज वा वैदिक धर्म की शरण में आकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होना चाहिये। इससे बढ़कर कुछ प्राप्तव्य नहीं है।

# वैदिक यज्ञ दर्शन

व्हट्स एप्प के मित्रों भाइयों और बहिनों के अनुरोध पर आज से हम वैदिक यज्ञ के लगभग सब मन्त्रों की व्याख्या आरम्भ करने जा रहे हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह मेरे इस शुभ कार्य को पूर्णता की ओर बढ़ाने में तथा उत्तम व्याख्या करने में सहयोग देते हुए मेरा मार्ग दर्शन भी करते रहें। इस से पूर्व ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना के मन्त्रों की विशद् व्याख्या करके आपको भेंट कर चुका हूं, जो आप लोगों को अति प्रिय लगी इस कारण ही आप सब सहयोगियों ने अग्निहोत्र की व्याख्या का भी आदेश दिया, जिसे मैं शिरोधार्य करता हुआ आज से आरम्भ करने जा रहा हूँ। इस क्रम में सब से पूर्व हमें आचमन और अंग स्पर्श के लिए जानना होगा। जो इस प्रकार है:-

**१. आचमन**

परमपिता परमात्मा ने हमारे कल्याण के लिए तथा कर्मभोग के लिए जिस सृष्टि की रचना की है, उसे हम पूरा दिन शौचादि तथा रोम रोम से निकल रही गंदगी से गन्दा करते हैं, इसे स्वच्छ रखना भी हमारा ही कर्त्तव्य है। इसलिए हम प्रतिदिन प्रात:काल उठ कर स्नानादि से निवृत हो कर दैनिक अग्निहोत्र की तैयारी आरम्भ कर देते हैं। कुछ स्थान पर लिपाई करके अथवा पोचा लगा कर, यहाँ हवन कुण्ड स्थापित करते हैं और आसन आदि लगाकर सब प्रकार से अग्निहोत्र के बर्तन तथा अन्य सामग्री जुटा कर सब प्रकार की तैयारी पूर्ण करते हैं और फिर यहाँ परिवार सहित बैठकर सर्वप्रथम हम आचमन तथा फिर अंग स्पर्श के मन्त्रों को बोलते हुए अपने अन्दर बाहर को शुद्ध करते हैं।

आचमन के लिए तीन बार अपने दायें हाथ की हथेली पर थोड़ा थोड़ा जल लेकर मन्त्र बोलने के पश्चात् इसे पी जाते हैं। इस के अन्तर हम बाएं हाथ की हथेली पर थोड़ा जल लेकर मन्त्र के अनुसार दिये हाथ के बीच की दो अँगुलियों को जल से छूकर शरीर के विभिन्न अंगों पर लगाते हैं। अब मैं आचमन मन्त्रों पर विचार करता हूँ। यह सब कंठ के कफ को नष्ट करने, आलस्य को दूर करने तथा नई चेतना पैदा करने के लिए किया जाता है। दूसरे अर्थ में हम परमपिता से इन मन्त्रों के साथ यह प्रार्थना कर रहे होते हैं कि हे प्रभु! हमारे इन सब अंगों को पुष्ट करें, इन में ऊर्जा बनी रहे और यह अंग आजीवन हमारे लिए कार्यशील रहें। दूसरे हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि हमारी जीवन शक्ति बनी रहे, हम सदा पवित्रता और धार्मिकता के आगोश में ही रहें। आचमन मन्त्र इस प्रकार हैं:-

**ओ३म् अमृतोऽपस्तरणमसि स्वाहा।।१।।**

**ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।।२।।**

ओ३म् सत्यं यश: श्रीर्मयि श्री: श्रयतां स्वाहा।।३।।

यह तीनों मन्त्र मानवग्रह्यसुत्र के अंतर्गत १.९.१५-१७ से लिए गए हैं।

**शब्दार्थ**

अमृत=जल, उप-स्तरण=नीचे का बिछौना, अपि-धानं= ऊपर का ओढ़ना, असि= है। सत्यं=सत्य, यश:=यश, श्री:=आश्रयभूत, मयि=मुझ में, श्रयतां=धारण हो। स्वाहा=मैं मन, वचन और कर्म से यह स्व=अपने स्वरूप को समझकर, आह=कहता हूँ।

**व्याख्या:**

हे प्रभु आप हमारे अमृत मयी बिछौना और ओढना हो

परमपिता परमात्मा के साथ हम वह सब सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, जो इस संसार में हमारे सम्बन्धियों तथा मित्रों आदि के रूप में हैं, यहाँ तक कि किसी अवसर पर हम उसे शत्रु के रूप में भी याद करते हैं। किन्तु सब से अधिक सुख देने वाली, सब से अधिक मार्ग दर्शन करने वाली और सब से अधिक प्रेम करने वाली केवल और केवल माता ही होती है। इसलिए हम इस मन्त्र में परमपिता परमात्मा को माता मान कर उसकी सेवा में खड़े हैं और वह सब कुछ मांगते हैं, जो एक माता अपने नन्हें से बालक को दिया करती है, बिना मांगे ही दिया करती है। माता का वह गोद ही नन्हें से बालक के लिए सब से महत्वपूर्ण स्थान होती है, जिस में बैठकर वह किलकारियाँ मारता है, कलोलें करता है, स्वयं को सुरक्षित मानते हुए अपने शत्रु को भी ललकारने लगता है तथा अनेक बार तो इस गोद में सो भी जाता है। माता की गोद में रहते हुए बालक निश्चिन्त होता है और बिना किसी रोक-टोक के, बिना किसी भय-संकट के विश्राम करता है। इस के आधार पर ही हम इस मन्त्र में प्रभु को माता मानते हुए प्रार्थना करते हैं कि:-

**ईश्वर हमारी माता है**

हे प्रभु! तुम हमारी माता हो। जिस प्रकार माता की गोद में हम लोग आमोद-प्रमोद करते हैं, आनंद लेते हैं और थक जाने पर सो भी जाते हैं। इस प्रकार ही आपकी गोद हमें सदा उपलब्ध रहे। आपकी गोदी में रहते हुए हमें किसी प्रकार का कोई भय नहीं होता। हमें इस प्रकार अनुभव होता है कि आप हमारे बिछौने का काम कर रहे हो। इस में सौ कर हमें इस प्रकार का आभास होता है कि हम अमृत को पा गए हैं। कहा भी है कि यदि उत्तम बिस्तर मिल जाए तो यह अमृत के समान आनंद मिल गया है। इस अमृत रूपी बिस्तर को पाकर हमने मानो विश्व के सब सुखों को प्राप्त कर लिया है। इतना ही नहीं हे साधक! यहाँ यह भी स्मरण कर कि तू भी अमृत ही है। अपने शरीर रूपि वस्त्रों को समय समय पर बदलते हुए सत्व, तमस् और रजस् के चक्रों को पकड़कर ऊपर नीचे होता रहता है। इसलिए हे जीव तू अपने सब भ्रमों को दूर कर और अपने स्वरूप को समझ। वह प्रभु तो अमृतों का भी अमृत है। इसलिए उस के बिछौने रूपी गोद का आनंद उठा।

**अमृतमयी ओढ़ना**

जब बालक अपनी माता के अमृतमयी बिछौना अर्थात् गोदी को पाकर उसमें सो जाता है तो इस बालक को मक्खी, मच्छर तथा गर्म हवाओं से बचाने के लिए माता उसके ऊपर अपना ओढ़ना ओढ़ा कर उसके विश्राम के क्षणों को भी अमृत से भर देती है। इस प्रकार ही हम परमपिता के बालक है, उसकी अमृतमयी गोदी में विश्राम कर रहे हैं, वह प्रभु हमारा अमृतमयी बिछौना है तो वह हमारे लिए अमृतमयी ओढ़ने का काम भी करता है क्योंकि परमपिता परमात्मा सर्व व्यापक है। इस धरती पर हमें जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, यह सब परमपिता परमात्मा का दिया हुआ हमारे लिए बिछौना ही तो है। जब माता का दुपट्टा इस में सो रहे बालक पर आ जाता है तो बालक के सुखों का पारावार ही नहीं रहता। यह उसके लिए अमृत से भरपूर क्षण होते हैं। अत: जब हम परमात्मा की गोद में सो रहे हैं तो वह आकाश परमात्मा के रूप में हमारे लिये ओढ़ने का काम करता है। यह अमृतमयी ओढ़ होता है। इस के नीचे रहते हुए हम स्वर्ग के आनंद प्राप्त करते हैं। यह सब परम पिता परमात्मा तब ही देगा, जब हम उसका आशीर्वाद पाने के गुण अपने अन्दर धारण कर लेंगे।

**सत्य को प्राप्त करें**

जब हम परमपिता परमात्मा की अमृतमयी गोद में रहते हुए उसी के रूप रूपी ओढ़ने को ओढ़ रहे होते हैं तो हम ऐसा अनुभव करते हैं कि परमपिता के आशीर्वाद को पाकर हमें सब कुछ मिल गया है। इस गोदी में सोते हुए हम सत्य मार्ग के अनुगामी बन सत्य पथ पर ही सदा चलते रहने की प्रतिज्ञा लेते हैं। अत: प्रभु से हमें सत्य का मार्ग मिलता है।

**यश को प्राप्त करें**

जब हम सत्य को ग्रहण कर लेते हैं और सदा सत्य के मार्ग पर ही चलने लगते हैं तो हमें अमृत के रूप में सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। अब हम दूसरे लोगों की सहायता के लिए भी अपना हाथ आगे बढ़ाते हैं। जब हम निर्धन बेसहारा लोगों के लिए सहारा बनते हैं तो यह लोग हमारी चर्चा अपने दूर दूर रहने वाले मित्रों, सम्बन्धियों और परिजनों से करते हैं। इस प्रकार हमारा यश और कीर्ति दूर दूर तक चली जाती है। प्रभु की गोद में जाने का यह भी एक सुख है।

**श्री को प्राप्त करें**

श्री से अभिप्राय: सुखों से अथवा धन वैभव से लिया जा सकता है। जब प्रभु की गोद में रहने के हम अधिकारी बन जाते है तो हम सत्य पथ के अनुगामी बनते हैं। सत्य पथ पर चलने से हमारा यश और कीर्ति बढ़ जाती है। जब यश और कीर्ति बढ़ती है तो इस प्रकार के यशस्वी व्यक्ति से सब लोग मेल जोल रखना चाहते हैं तथा अपना सब प्रकार का व्यापार व्यवहार भी उसके साथ ही करना चाहते हैं। जब हमारे अनगिनत हितचिन्तक हो जाते हैं और व्यवसाय में हमें अनगिनत सहयोगी हो जाते हैं तो हमारे साधन भी बढ़ने लगते हैं। आय भी बढ़ती है और इस बढ़ी हुई आय से हम और भी अधिक परोपकार के कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार हमें परमपिता परमात्मा रूपी बिछौने और ओढ़ने में विश्राम करते हुए पहले से भी कहीं अधिक अमृत प्राप्त होता है, जिसका आनंद लेते हुए हम स्वयं भी आनंदित होते हैं तथा दूसरों को भी करते हैं।

यश से हमारा अभिप्राय: विस्तार से होता है। अत: इस सब से हमारा कार्य, हमारा व्यवहार, हमारा संपर्क, हमारा कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो जाता है, इसकी छत्र छाया में रहते हुए अनेक लोगों को सहायता मिलती है, सुख के साधन मिलते हैं, भरण पोषण होता है। यह सब अमृत ही तो है, जिसे हमारा यह साधक निरंतर बाँट रहा है। इससे वह स्वयं भी अमृतमयी छाया प्राप्त कर रहा है और दूसरों को भी यह छाया पहुंचाने में सहायक हो रहा है। यह ही साधक की संपत्ति है, यह ही साधक के लिए अमृत है। इसलिए प्रत्येक प्रभु भक्त साधक को चाहिए कि वह इन सुख रूपी अमृत को पाने के लिए अन्दर तक घुसता ही चला जावे और अन्यों को भी इस के लिए सहायता देता रहे।

**अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. ७- वैशाली**

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**